बिहार राज्य धार्मिक न्यास बोर्ड

बनाम

पलत लाल और एक अन्य

(Bihar State Board of Religious Trust

Vs.

Palat Lall and Another)

(16 अक्टूबर, 1970)

(मु० न्या० एम० हिदायतुल्लाह और न्या० ए० एन० रे)

बिहार हिन्दू रिलीजस ट्रस्ट्स ऐक्ट, 1950—क्या कुल देवता के प्रति किया गया विन्यास लोक न्यास है जिसे यह अधिनियम लागू होता है ?—विन्यास का स्वरूप—किस प्रकार विनिश्चित किया जाना चाहिए ।

हिन्दू विधि—लोक और प्राइवेट विन्यास के बीच प्रभेद ।

प्रत्यर्थियों के अन्कल चौधरी लाल बिहारी सिन्हा ने विल करके एक विन्यास सृष्ट किया और उसके द्वारा अपने कौटुम्बिक घर में प्रतिष्ठापित एक मूर्ति के पक्ष में कुछ सम्पत्तियां विन्यस्त कीं । वसीयतकर्ता के कोई पुत्र नहीं था । उसने अपनी दोनों पत्नियों और बहिन को मुतवल्ली, प्रबन्धक और निष्पादक के रूप में नामनिर्दिष्ट किया और यह व्यवस्था की कि उन लोगों की मृत्यु के पश्चात् किसी वैष्णव कायस्थ के पुत्र को, वसीयतकर्ता के गुरू के परामर्श से, मुतवल्ली, प्रबन्धक और निष्पादक नियुक्त किया जाए । वसीयतकर्ता ने अपने कौटुम्बिक घर का भीतरी भाग, सब नकद धन और सब जंगम सम्पत्तियां अपनी पत्नियों और बहिन की अभिरक्षा में दे दीं जो उनके जीवनकाल तक उसी रूप में रहनी थीं और घर का बाहरी भाग तथा सीतामढ़ी स्थित घर को कुल देवता की सम्पदा कर दिया ।

बिहार हिन्दू रिलीजस ट्रस्ट्स ऐक्ट, 1950 के पारित होने पर, उस अधिनियम के अधीन गठित बोर्ड ने प्रत्यर्थियों को एक सूचना भेजी जिसमें यह कहते हुए कि इस दृष्टि से चूंकि उन सम्पत्तियों से एक लोक हिन्दू धार्मिक न्यास गठित होता है, उनसे उस अधिनियम के आधार पर कुछ विशिष्टियां फाइल करने के लिए कहा गया । प्रत्यर्थियों ने अधिनियम की धारा 78 के अधीन बोर्ड पर एक नोटिस तामील करने के पश्चात् एक वाद इस घोषणा के लिए फाइल किया कि वादगत सम्पत्तियां बिहार हिन्दू रिलीजस ट्रस्ट्स ऐक्ट के अन्तर्गत नहीं आती हैं और वे प्राइवेट विन्यास हैं । बिचारण न्यायालय ने उनका वाद स्वीकार कर

लिया। उच्च न्यायालय ने निचले न्यायालय के विनिश्चय की पुष्टि की। उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध बोर्ड ने इस न्यायालय में अपील की और उसकी ओर से यह साबित करने का प्रयास किया गया कि प्रश्नगत न्यास, लोक न्यास है और इसलिए बिहार हिन्दू रिलीजस ट्रस्ट्स ऐक्ट, 1950 उसको लागू होता है। अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – (i) इस मामले में मूर्ति अनेक वर्षों से इस कुटुम्ब में थी और ठाकुर-द्वारा में सेवा-पूजा केवल यह कुटुम्ब ही कर रहा था और कहीं भी यह वर्णित नहीं है कि जनता ने कभी भी इस मूर्ति की देखभाल की थी या साधिकार उन्हें उपासना करने में हाथ बंटाने दिया गया था। इसके अतिरिक्त विल में भी यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि वसीयतकर्ता की मृत्यु के पश्चात् जनता को साधिकार प्रवेश करने दिया जाएगा। पूरी व्यवस्था से यह ज्ञात होता है कि ठाकुर जी की और आगे देखभाल का काम कुटुम्ब के जिम्मे था और कुटुम्ब द्वारा नामनिर्दिष्ट किए जाने पर ही वैष्णवमत के किसी विशिष्ट व्यक्ति को कुटुम्ब के उन सदस्यों की मृत्यु हो जाने पर, जो वसीयतकर्ता की मृत्यु के पश्चात् मुतवल्ली होने वाले थे, भारसाधक नियुक्त किया जाना था। यदि यह आशयित था कि यह एक लोक विन्यास होना चाहिए तो यह स्पष्ट है कि जब वसीयतकर्ता की मृत्यु हुई तब वह स्त्रियों की बजाय, जो दूसरों की मार्फत ही पूजा कर सकतीं थीं जनता के किसी व्यक्ति के बारे में सोचता। प्रश्नगत विल में किसी भी प्रक्रम में न तो जनता द्वारा हस्तक्षेप करना आशयित है और न ही ऐसा अनुज्ञात किया गया है।

(ii) विन्यास का स्वरूप उस दस्तावेज की भाषा से जिससे कि विन्यास सृष्ट किया गया था, जनता के व्यवहार और उन व्यक्तियों के आचरण और उनकी आदतों से, जो ऐसे मन्दिर या ठाकुर-द्वारा में आते हैं, ज्ञात हो सकता है।

(iii) यदि यह मालूम हो कि मन्दिर की सम्पदा किसी व्यक्ति या कुटुम्ब को किए गए अनुदान के द्वारा अर्जित की गई है तो तुरन्त यह अनुमान नहीं कर लेना चाहिए कि वह समर्पण लोक-समर्पण है। यह तथ्य कि जनसाधारण उपासकों को मन्दिर में प्रवेश दिया जाता था, एक निश्चायक तथ्य नहीं है क्योंकि उपासक चढ़ाना लेकर आते हैं अतः उन्हें वापस नहीं किया जा सकता और किसी मूर्ति के लोकप्रिय होने से इस तथ्य का संकेत नहीं मिलता कि सम्पत्तियों का समर्पण जनता के लिए किया गया था।

जब सम्पत्ति किसी कौटुम्बिक मूर्ति की उपासना के लिए समर्पित की जाती है तब वह प्राइवेट विन्यास न कि लोक विन्यास होता है क्योंकि जो व्यक्ति देवता के मन्दिर में उपासना करने के हकदार हैं, वे उसी कुटुम्ब के सदस्य हो सकते हैं और वह व्यक्तियों का एक अभिनिश्चित समूह ही होगा। किन्तु यदि हिताधिकारी, कुटुम्ब के सदस्य नहीं हैं या कोई विशिष्ट व्यक्ति नहीं हैं तो विन्यास केवल लोक विन्यास ही माना जा सकता है।

बाबू भगवान दीन और कुछ अन्य बनाम **गिर हर स्वरूप और कुछ अन्य** (Babu Bhagwan Din and Others *Vs.* Gir Har Saroop and Others), 67 आई० ए० 1 निर्दिष्ट किया गया।

1970(10) eILR(PAT) SC 1

देवकी नन्दन बनाम **मुरलीधर** (Deoki Nandan *Vs.* Murlidhar), (1956) एस० सी० आर० 756 से प्रभेद बतलाया गया।

सिविल अपीली अधिकारिता : 1967 की संख्या 800 वाली सिविल अपील।

1959 की संख्या 321 वाली मूल डिक्री के विरुद्ध पटना उच्च न्यायालय के तारीख 15 जनवरी, 1964 वाले निर्णय और डिक्री के विरुद्ध अपील।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री डी० गोवर्धन और आर० गोवर्धन
प्रत्यर्थी सं० 1 की ओर से	श्री आर० सी० प्रसाद

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायाधिपति एम० हिदायतुल्लाह ने दिया।

मुख्य न्यायाधिपति हिदायतुल्लाह—

यह अपील पटना स्थित उच्च न्यायालय के तारीख 15 जनवरी, 1964 के निर्णय के विरुद्ध की गई है जिसमें प्रथम बार के न्यायालय का विनिश्चय अभिपुष्ट किया गया था। यह मामला निम्नलिखित परिस्थितियों में उद्भूत हुआ।

चौधरी लाल बिहारी सिन्हा ने जो दो वादियों (इस अपील के प्रत्यर्थियों) का चाचा (अन्कल) था, 2 दिसम्बर, 1908 को एक विल निष्पादित करके एक विन्यास सृष्ट किया जिसके द्वारा वसीयतकर्ता के कौटुम्बिक घर में प्रतिष्ठापित एक मूर्ति जो राम-जानकी और साथ ही श्री ठाकुर जी कही जाती थी, के पक्ष में कतिपय सम्पत्तियां विन्यस्त कीं। वसीयतकर्ता ने कहा कि मेरे माता-पिता ने अपने घर के भीतर इस मूर्ति की प्रतिष्ठापना की थी और वे उपासना करते थे और जब से मैंने होश संभाला है तब से मैं भी उपासना करता रहा हूं। वसीयतकर्ता ने आगे यह कहा कि मेरी दो पत्नियां हैं किन्तु उनमें से किसी से भी मेरा कोई भी पुत्र पैदा नहीं हुआ यद्यपि मेरी एक पुत्री और एक नातिन भी है। जब उसने विल की तब उसकी दोनों पत्नियां, उसकी बहन के दोनों लड़के, बाबू उमा कान्त प्रसाद और बाबू गौरी कान्त प्रसाद तथा नातिन गिरि राज नन्दिनी कुंअरी जीवित थीं। विल के द्वारा उसने शोभा-पूजा, राजभोग, समैया, ठाकुर जी के उत्सव और त्योहारों और आगन्तुकों के सदावर्त के खर्चों की व्यवस्था की जो उसी प्रकार किए जाने थे जिस प्रकार कि वह करता रहा था। उसने अपनी दोनों पत्नियों और बहन रामसखी कुंअरी को जो बाबू गुदार सहाय की विधवा थी, तब तक के लिए जब तक वे जीवित रहें, मुतवल्लियों, प्रबन्धकों और निष्पादकों के रूप में नामनिर्दिष्ट किया। उसने यह व्यवस्था की कि उन्हें श्री ठाकुरजी की सम्पदा का प्रबन्ध एकमत से करना चाहिए जैसा कि मैं बहुत समय से करता आ रहा हूं और यह कि उनकी मृत्यु के पश्चात्, श्रीवास्तव, कायस्थ और वैष्णव के किसी पुत्र को श्री ठाकुरजी की सम्पदा का मुतवल्ली, प्रबन्धक और निष्पादक नियुक्त किया जाना चाहिए और यह कि मेरी पत्नियां और बहन को चाहिए कि वे बैकुण्ठपुर निवासी श्री जवाहरिख जो मेरे गुरु हैं, की सलाह और परामर्श से अपने जीवनकाल में ही उसे

नियुक्त कर दें। उसने घर को दो भागों में बांट दिया। घर का भीतरी भाग उसकी पत्नियों और बहन के जीवनकाल के दौरान उनके कब्जे में रहना था और घर का सम्पूर्ण बाहरी भाग और उसके साथ सीतामढ़ी में स्थित घर श्री ठाकुरजी की सम्पदा थीं। सब नकद धन और उसकी सब जंगम सम्पत्तियां उसकी पत्नियों की अभिरक्षा में रहनी थीं। एक अनुसूची भी विल से संलग्न थी जिसमें सम्पत्तियों के ब्यौरे दर्शाए गए थे। उसमें 16 आने हिस्से वाले चार गांव, आठ आने हिस्से वाले तीन गांव और बारह आने हिस्से वाला एक गांव सम्मिलित था। विल में उसके कुछ अन्य नातेदारों के पक्ष में भी कतिपय वसीयतें की गई थीं। किन्तु उनसे हमारा संबंध नहीं है। श्री ठाकुरजी की देखभाल के लिए समर्पित की गई सम्पत्तियों की तुलना में वे बहुत कम हैं।

जब बिहार हिन्दू रिलीजस ट्रस्ट्स ऐक्ट, 1950 पारित हुआ तब उस अधिनियम के अधीन गठित बोर्ड ने वादियों को एक सूचना भेजी जिसमें, यह कहते हुए कि इस दृष्टि से चूंकि उन सम्पत्तियों से एक लोक हिन्दू धार्मिक न्यास गठित होता है, उनसे अधिनियम के आधार पर कुछ विशिष्टियां फाइल करने के लिए कहा गया। तदुपरि अधिनियम की धारा 78 के अधीन बोर्ड पर एक नोटिस तामील करने के पश्चात् वादियों ने एक वाद इस घोषणा के लिए फाइल किया कि वादगत सम्पत्तियां बिहार रिलीजस ट्रस्ट्स ऐक्ट के अध्यधीन नहीं हैं और वे प्राइवेट विन्यास हैं।

वादियों की ओर से इस मामले में बहुत अधिक मौखिक साक्ष्य दिया गया और कुछ दस्तावेजें भी फाइल की गईं। मामले में साक्ष्य के आधार पर जिसे विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने स्वीकार किया था, यह विनिश्चित किया गया कि वह विन्यास प्राइवेट है जिस पर यह अधिनियम लागू नहीं होता। विद्वान् विचारण न्यायाधीश के समक्ष इस न्यायालय के उस विनिश्चय का निर्देश किया गया जो **देवकी नन्दन** बनाम **मुरलीधर**(1) वाले मामले में रिपोर्ट किया गया है। हम उस मामले की चर्चा अभी करेंगे। विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने उस मामले से प्रभेद बतलाया और यह अभिनिर्धारित किया कि प्रस्तुत मामले में विन्यास लोक न्यास अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता क्योंकि वह कुल देवता के प्रति किया गया था।

उच्च न्यायालय में अपील की गई जो असफल रही। उच्च न्यायालय विद्वान् विचारण न्यायाधीश से इस बाबत सहमत था कि उस विन्यास से प्राइवेट विन्यास न कि लोक न्यास सृष्ट हुआ था। उच्च न्यायालय ने मामले में के साक्ष्य पर विचार नहीं किया क्योंकि विद्वान् न्यायाधीशों के मतानुसार विचारण न्यायाधीश द्वारा उसका खुलासा पर्याप्त रूप से दे दिया था और उसका निष्कर्ष स्वीकार कर लिया गया। उच्च न्यायालय के समक्ष भी न्यायालय का वही मामला उद्धृत किया गया। किन्तु उसका पुनः इस आधार पर प्रभेद बतलाया गया कि यह मूर्ति कौटुम्बिक मूर्ति थी और इसका यह स्वरूप विन्यास के समय से या विन्यास के समय परिवर्तित नहीं हुआ था।

---

(1) (1956) एस० सी आर० 756, ए० आई० आर० 1957 एस० सी० 133.

1970(10) eILR(PAT) SC 1

इस अपील में जो एकमात्र प्रश्न उठाया गया है वह यह है कि क्या यह न्यास लोक न्यास है जिसको बिहार हिन्दू रिलीजस ट्रस्ट्स ऐक्ट लागू होता है या वह एक प्राइवेट न्यास है जो इस अधिनियम के व्याप्तिक्षेत्र के अन्तर्गत नहीं आता। श्री गोवर्धन ने इस मामले में दलील देते हुए कई परिस्थितियां दर्शायीं जिनसे उनके कथनानुसार यह सरलता से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह विन्यास एक लोक न्यास था और यह कि उसे यह लागू होता है। उनके कथनानुसार वसीयतकर्ता निःसन्तान था और इस कारण सम्पत्ति का अपने कुटुम्ब के लिए परिरक्षण करना उसके लिए आवश्यक नहीं था और यह कि उसने मूर्ति की देखभाल के लिए बहुत सी सम्पत्तियां समर्पित की थीं और सम्पत्तियों की अधिकता से यह दर्शित होता है कि ऐसा उसने सर्वसाधारण उपासकों के न कि अपने कुटुम्ब वाले उपासकों के फायदे के लिए किया होगा; और यह कि वसीयतकर्ता की दोनों पत्नियों और बहन से गठित, सेवायतों की पंक्ति के समाप्त हो जाने के पश्चात् सेवायत का पद एक दूसरे समुदाय के व्यक्ति को एक परव्यक्ति की सलाह के अनुसार मिलना था और यह कि विलेखों में से किसी भी विलेख में यह वर्णित नहीं है कि ठाकुरजी की उपासना करने के लिए जनता को प्रवेश नहीं करने दिया जाएगा। उसने भी उसी मामले का अवलम्ब लिया जिसका हम हवाला दे चुके हैं और **स्वामी शालिग्रामाचार्य** बनाम **राघवाचार्य और कुछ अन्य**(2) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय का भी अवलम्ब लिया। **बाबू भगवान दीन और कुछ अन्य** बनाम **गिर हर स्वरूप और कुछ अन्य**(3) वाले मामले में प्रिवी कौंसिल ने बहुत पहले धार्मिक संस्था के विशेष रूप से मन्दिर और मूर्तियों के लोक और प्राइवेट विन्यासों में प्रभेद बतलाया था और सर जार्ज रैनकिन ने कुछ सिद्धान्त अधिकथित किए थे जिनकी ओर ध्यान आकृष्ट किया जा सकता है क्योंकि उच्चतम न्यायालय के उस विनिर्णय में जिसका श्री गोवर्धन ने बहुत अधिक अवलम्ब लिया है उनके प्रति निर्देश किया गया था। सर जार्ज रैनकिन ने यह कहा कि यदि यह मालूम हो कि मन्दिर की सम्पदा किसी व्यक्ति या कुटुम्ब को किए गए अनुदान द्वारा अर्जित की गई है तो तुरन्त यह अनुमान नहीं कर लेना चाहिए कि वह समर्पण लोक समर्पण है। उन्होंने यह मत भी व्यक्त किया कि यह तथ्य कि सर्वसाधारण उपासकों को मन्दिर में प्रवेश दिया जाता था एक निश्चायक तथ्य नहीं है क्योंकि उपासक चढ़ावा लेकर मंदिर में आते हैं, अतः उन्हें बाहर नहीं निकाला जा सकता और किसी मूर्ति के लोकप्रिय होने से इस तथ्य का संकेत नहीं मिलता कि सम्पत्तियों का समर्पण जनता के लिए किया गया था। इस विनिर्णय के प्रति उस मामले में निर्देश किया गया था जिसका श्री गोवर्धन ने अवलम्ब लिया है।

उस मामले में दो बातों पर जोर दिया गया है और वे हमारे समक्ष के इस मामले के लिए विनिश्चायक हैं। निःसंदेह पहली बात यह थी कि उस मामले में समर्पणकर्ता का कोई पुत्र नहीं था और किसी व्यक्ति का लोक न्यास सृष्ट किए बिना सम्पत्ति को देवता

---

(2) 1964 की सिविल अपील संख्या 645 जिसका विनिश्चय 4-11-65 को किया गया।
(3) (1939) एल० आर० 67 आई० ए० 1.

के उपयोग के लिए लगा देना अप्रायिक होगा। किन्तु दूसरी बात यह थी कि प्रतिष्ठा का उत्सव जो उत्सर्ग (डेडीकेशन) के समान था, किया गया था और इस कारण इन उत्सवों के पश्चात् मूर्ति स्वतः लोक मूर्ति बन गई थी। इस मामले में ऐसी बात नहीं है क्योंकि इसमें मूर्ति पहले से ही कौटुम्बिक मूर्ति के रूप में विद्यमान थी। इस न्यायालय के पूर्ववर्ती मामले में मूर्ति की प्रतिष्ठा और उत्सर्ग दोनों कार्य एक ही समय पर किए गए थे और प्रतिष्ठापन सार्वजनिक रूप से किया गया था। हमारे विचार से यह तथ्य उस मामले में आधारभूत तथ्य था। इस बात पर केवल विचारण न्यायाधीश ने ही नहीं किन्तु उच्च न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीशों ने भी जोर दिया था। इस मामले में तथ्य ये हैं कि मूर्ति अनेक वर्षों से इस कुटुम्ब में थी और ठाकुर-द्वारा में सेवा-पूजा केवल यह कुटुम्ब ही कर रहा था और कहीं भी यह वर्णित नहीं है कि जनता ने कभी भी इस मूर्ति की देखभाल की थी या साधिकार उन्हें उपासना करने में हाथ बंटाने दिया गया था। इसके अतिरिक्त, समर्पणकर्ता ने अपनी विल में भी यह स्पष्ट नहीं किया कि उसकी मृत्यु के पश्चात् जनता को साधिकार प्रवेश करने दिया जाएगा। पूरी व्यवस्था से यह ज्ञात होता है कि ठाकुरजी की और आगे देखभाल का काम कुटुम्ब के जिम्मे था और कुटुम्ब द्वारा नामनिर्दिष्ट किए जाने पर ही वैष्णव मत के किसी विशिष्ट व्यक्ति को कुटुम्ब के उन सदस्यों की मृत्यु हो जाने पर जो वसीयतकर्ता की मृत्यु के पश्चात् मुतवल्ली होने वाले थे, भारसाधक नियुक्त किया जाना था। यह स्पष्ट है कि इस कुटुम्ब में कोई पुरुष सन्तान नहीं थी और इस कारण कुटुम्ब में पहले से होती आ रही ठाकुरजी की उपासना करने वाला और सेवा-पूजा के लिए प्रबन्ध करने वाला कोई व्यक्ति नहीं था। कोई दूसरी व्यवस्था की ही जानी थी और यह व्यवस्था विल के द्वारा की गई थी। विल में जो कुछ कहा गया है उससे अधिक नहीं पढ़ा जा सकता।

अब, यदि यह आशयित था कि यह एक लोक विन्यास होना चाहिए तो यह स्पष्ट है कि जब वसीयतकर्ता की मृत्यु हुई तब वसीयतकर्ता स्त्रियों की बजाय जो दूसरों की मार्फत ही पूजा कर सकतीं थीं, जनता के किसी व्यक्ति के बारे में सोचता। स्वयं वसीयत-कर्ता की मृत्यु हो जाने पर और उसकी पत्नियों और उसकी बहिन के मौजूद न होने पर ही सेवा-पूजा के लिए किसी विशिष्ट व्यक्ति को चुना जाना था। इसमें ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है कि जनता ठाकुर जी की देखभाल करेगी या उनका प्रबन्ध करेगी। प्रश्नगत विल में किसी भी प्रक्रम में न तो जनता द्वारा हस्तक्षेप करना आशयित है और न ही ऐसा अनुज्ञात किया गया है।

हमारे सामने दो अन्य दस्तावेजें भी लायी गईं किन्तु उन्हें संक्षिप्ततः निपटाया जा सकता है। प्रथम, प्रदर्श-बी, एक बन्धक-विलेख है जिसमें उस सम्पत्ति की बाबत जो विन्यास की विषय-वस्तु थी, परिवर्णन है। किन्तु उस दस्तावेज में भी विन्यास के स्वरूप की बाबत कुछ नहीं कहा गया है और वह महत्त्वहीन है। दूसरी दस्तावेज, प्रदर्श-सी, कृषिक आयकर के सहायक आयुक्त का एक निर्णय है जिसमें न्यास विलेख के उपबन्धों के अनुसार खैराती और धार्मिक न्यासों के लिए अलग रख दी गई आय की बाबत छूट का

दावा किया गया था। यह इस बात को दर्शाने का प्रयत्न है कि कुटुम्ब इसे एक लोक न्यास मानता था। कोई व्यक्ति आयकर या कृषिक आयकर से छूट प्राप्त करने का दावा करने के लिए जो कुछ करता है वह विन्यास के स्वरूप के लिए निश्चायक नहीं है। विन्यास का स्वरूप उस दस्तावेज की असली मंशा से ही जिससे कि विन्यास सृष्ट किया गया था, जनता के व्यवहार और उन व्यक्तियों के आचरण और उनकी आदतों से जो ऐसे मन्दिर या ठाकुर-द्वारा में आते हैं, ज्ञात हो सकता है। छूट के लिए दावा विन्यास सम्पत्ति की आय में से कुछ बचत करने की दृष्टि से किया गया था। हो सकता है कि कुछ अन्य कारणों से प्रेरित होकर न कि इस कारण से कि वह एक लोक विन्यास था वैसा किया गया था।

अब हम उस दूसरे मामले पर विचार करते हैं जिसका हवाला हमारे सामने दिया गया है। किन्तु उस मामले में भी, विद्वान् न्यायाधीशों ने पूर्ववर्ती मामले के प्रति निर्देश किया था और उन्होंने पूर्ववर्ती निर्णय से एक अंश उद्धृत किया है जिसमें यह मत व्यक्त किया गया था कि जब सम्पत्ति किसी कौटुम्बिक मूर्ति की उपासना के लिए समर्पित की जाती है तब वह प्राइवेट विन्यास न कि लोक विन्यास होता है क्योंकि जो व्यक्ति देवता के मन्दिर में उपासना करने के हकदार हैं वे उसी कुटुम्ब के सदस्य हो सकते हैं और वह व्यक्तियों का एक अभिनिश्चित समूह ही होगा। किन्तु यदि हिताधिकारी कुटुम्ब के सदस्य नहीं हैं या कोई विशिष्ट व्यक्ति नहीं है तो विन्यास केवल लोक विन्यास ही माना जा सकता है जिसका आशय साधारण उपासकों को फायदा पहुंचाना होगा।

प्रस्तुत मामले में मूर्ति एक कौटुम्बिक मूर्ति थी और उपासक हमेशा ही कुटुम्ब के सदस्य रहे। वास्तव में, इस सम्बन्ध में बहुत अधिक साक्ष्य है। विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने यह कहा है कि इस सम्बन्ध में बहुत महत्त्वपूर्ण और प्रमुख व्यक्तियों ने साक्ष्य दिया है। विचारण न्यायाधीश के निर्णय में साक्षियों की एक सूची दी हुई है जिसमें अपीलार्थी की ओर से कुसमारी ग्राम के वादी साक्षी सं० 3, 7, 12, 14, 15 और 16 सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त वादी साक्षी 17 है जो सीतामढ़ी का एक अधिवक्ता है, वादी साक्षी 6 है जो एक प्रतिष्ठित साक्षी है क्योंकि वह एक दवा-विक्रेता है, वादी साक्षी 8 भी एक प्लीडर है और वादी साक्षी 11 और 13 मुखत्यार हैं और सोमरी कुंअर से परिचित हैं। इन प्रतिष्ठित व्यक्तियों को चौधरी लाल बिहारी सिंह के कुटुम्ब को जानने का अवसर मिला और इस कारण वे इस तथ्य की बाबत बतलाने में सक्षम थे कि श्रीराम-जानकी जी चौधरी लाल बिहारी सिंह के कुल देवता थे। जिस मामले के प्रति हमने अभी निर्देश किया है उसमें मन्दिर की स्थापना से सम्बन्धित परिस्थितियां ऐसी थीं कि वे एक लोक विन्यास के अनुरूप ही हो सकतीं थीं। निःसंदेह वह एक प्राइवेट मन्दिर था जिसका एकमात्र स्वत्वधारी एक मद्रासी स्वामीजी थे। किन्तु उन्होंने एक विलेख निष्पादित करके मन्दिर को जनता के लिए खोल देने का विनिश्चय किया। उनका कोई कुटुम्ब नहीं था और वह अपने कुटुम्ब के सदस्यों के लिए देवता को प्रतिष्ठापित नहीं कर सकते थे। उस मामले में यह कहा गया था कि विलेख इतना हाल का है कि पश्चात्वर्ती आचरण का

साक्ष्य विन्यास के उस स्वरूप को परिवर्तित नहीं करेगा जो विलेख से अवधारित किया गया था और यह कि विनिश्चय तथ्य के प्रश्न पर था। यदि हम उसे इसलिए विधि का प्रश्न भी मान लें क्योंकि न्यास चाहे लोकन्यास हो या प्राइवेट न्यास हो उसमें तथ्य और विधि दोनों शामिल रहते हैं तो भी हमारा समाधान हो गया है कि प्रस्तुत मामले में साक्ष्य पूर्ण रूप से एक-तरफा है। एक भी परिस्थिति ऐसी नहीं है जो यह दर्शित करे कि विन्यास लोक विन्यास था और ऐसी स्थिति में हमें पहले किए गए निर्णय से असहमत होने के कोई कारण प्रतीत नहीं होते।

कुल मिलाकर हमें उच्च न्यायालय के और निचले न्यायालय के एकमत निर्णय से विचलन करने का कोई कारण मालूम नहीं हो सका है। दोनों न्यायालय सहमत हैं कि मौखिक साक्ष्य और साथ ही दस्तावेजों से केवल प्राइवेट न्यास ही उपदर्शित होता है और यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि किसी भी समय विन्यास लोक स्वरूप का था। इस न्यायालय के समक्ष पहले जो मामले प्रोद्धृत किए गए हैं उनका प्रभेद सरलता से बतलाया जा सकता है।

परिणामस्वरूप अपील असफल होती है। उच्च न्यायालय ने अपने आदेश में वादियों को खर्चे नहीं दिये थे। उच्च न्यायालय ने वादियों को खर्चे देने से इन्कार करने के जो कारण बतलाए थे वे यहां भी लागू होते हैं। तदनुसार हम आदेश देते हैं कि खर्चे उपगत किए अनुसार ही वहन किए जाएंगे।

अपील खारिज कर दी गई।

म०/त्रि०